

चन्दामामा
बच्चों का मासिक पत्र
1st JAN.
6



प्रकृति के प्रारम्भ में भगवान विष्णुदेव ने अवतार लिया। फिर उन्होंने अपने नाभि-कमल से ब्रह्मा को उत्पन्न किया और कहा-"हे ब्रह्मा ! आप अच्छी तरह सोच-विचार कर चौदहों लोक बनाइए और हरेक लोक में तरह-तरह के प्राणियों को जन्म दीजिए !" इस तरह विशाल सृष्टि को बनाने में एक माथे से कैसे काम चलता ? इस लिए उन्होंने ब्रह्मा को अच्छी तरह सोचने के लिए चार सिर दिए।

विष्णुदेव के आज्ञानुसार ब्रह्मा ने अपने चारों सिर लड़ा कर सोचा और सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ किया। पहले उन्होंने चौदहों लोक बनाए। फिर सोचने लगे कि इन लोकों में कहाँ-कहाँ किस-किस तरह के जीवों को जगह दी जाय? पृथ्वी पर पहले पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों और कीड़े-मकोड़ों को जगह दी जाय। और हाँ, ख़ास कर मनुष्य को तो जगह देनी होगी। फिर सवाल उठा-मनुष्य का निर्माण तो हो; लेकिन वह हो किस रूप में ? ब्रह्मा ने मन-ही-मन मनुष्य के रूप का एक खाका खींचा और उसके अनुसार रचना करने लगे। उन्होंने करोड़ों धड़ बनाए और हरेक पर एक-एक सिर बिठा दिया। फिर वे हरेक सिर में एक मुख, मुख पर दो आँखें, नाक, मुँह और सिर के दोनों बगल दो कान बनाने लगे। उन्होंने सोचा कि इसके बाद पेट, पीठ, दो-दो पैर, दो-दो हाथ और हरेक हाथ और पैर में पाँच-पाँच उँगलियाँ बनाएँगे।

लेकिन ब्रह्मा ने सोचा कुछ और हुआ कुछ और ! वे एक धड़ लेकर उस पर मुँह



बनाने लगते। लेकिन देखते-देखते एक मुँह दो में बदल जाता। आँखें बनाना शुरू करते तो महादेव की तरह तीसरी आँख निकल आती। दोनों ओर दो हाथ बनाना चाहते तो दो की जगह चार हाथ बन जाते। तब वे मन लगा कर सोचते कि इस बार दो ही पैर लगाएँगे। लेकिन अन्त में बन जाते पाँच पैर!

यह सब देख कर ब्रह्मा घबरा गए। वे सोचने लगे कि क्या कारण है जो इच्छा के विरुद्ध इस तरह के अनर्थ उन्हीं के हाथों हो रहे हैं। ब्रह्मा के चारों दिमागों को भरपूर काम मिल गया। वे इस तरह सोच ही रहे थे कि उनकी बनाई हुई कुछ मनुष्याकृतियाँ खिल-खिला कर हँस पड़ीं और कुछ दाँत निपोड़ कर चिढ़ाने लगीं। कुछ उन्हें डराने-धमकाने लगीं। कुछ आँखें फाड़-फाड़ कर दाँत चबाने लगीं। उनको देख कर ब्रह्मा जी की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। वे सोचने लगे कि उनके बनाए हुए जीव क्यों उन्हीं के खिलाफ बगावत का झण्डा खड़ा कर रहे हैं ? आखिर वे चिन्ता में डूबे जाकर लेट गए।

लेटे-लेटे ब्रह्मा की आँखें मूँदने लगीं। झपकी लग गई और उन्होंने एक सपना देखा। उनके सामने महासागर की भयङ्कर लहरें हहरा कर गिर रही थीं। उन पर उन्हें तैरता हुआ एक बड़ का पत्ता दिखाई दिया। वे उस पत्ते की ओर टक लगा कर देखने लगे। पत्ता बहता हुआ जब उनके नजदीक आया तो उन्होंने देखा कि उस पर एक दुधमुँहें बच्चे के रूप में गणेश जी विराजमान हैं। तब ब्रह्मा ने सोचा-"हाय ! मैंने कितनी बड़ी भूल की? समस्त

बिघ्नों को दूर करने वाले इस आदि देव का ध्यान किए बिना ही मैंने सृष्टि का कार्य प्रारम्भ किया। इसीलिए इतने विघ्न हुए। मेरी भूल की याद दिलाने के लिए ही गणेश जी मुझे इस रूप में दिखाई पड़े हैं।" यह सोच कर तुरन्त ब्रह्मा उठे और सागर के बीच गए।



वहाँ उन्होंने थोड़ी देर तक गणेशजी का ध्यान किया तो वह बड़ का पत्ता उनके बिलकुल नज़दीक आ गया। उन्होंने सपने में जो पत्ता देखा था ठीक उसी के जैसा यह भी था। इस पत्ते पर बाल-गणेश की दिव्य-मूर्ति स्पष्ट दिखाई दे रही थी। तब ब्रह्मा ने आनन्दित होकर बड़ी भक्ति के साथ गणेश जी को प्रणाम किया और अनेक प्रकार से स्तोत्र किया।

"हे देव ! मैं सृष्टि का प्रारम्भ करने के पहले तुम्हारी पूजा करना भूल गया ! इसी से मेरे काम में इतनी अड़चनें पड़ गईं; अब मैं अपनी गलती जान गया। इसलिए आप मुझे क्षमा करके ऐसी कृपा करें जिससे सृष्टि का कार्य बेरोक-टोक चल सके।" उन्होंने प्रार्थना की।

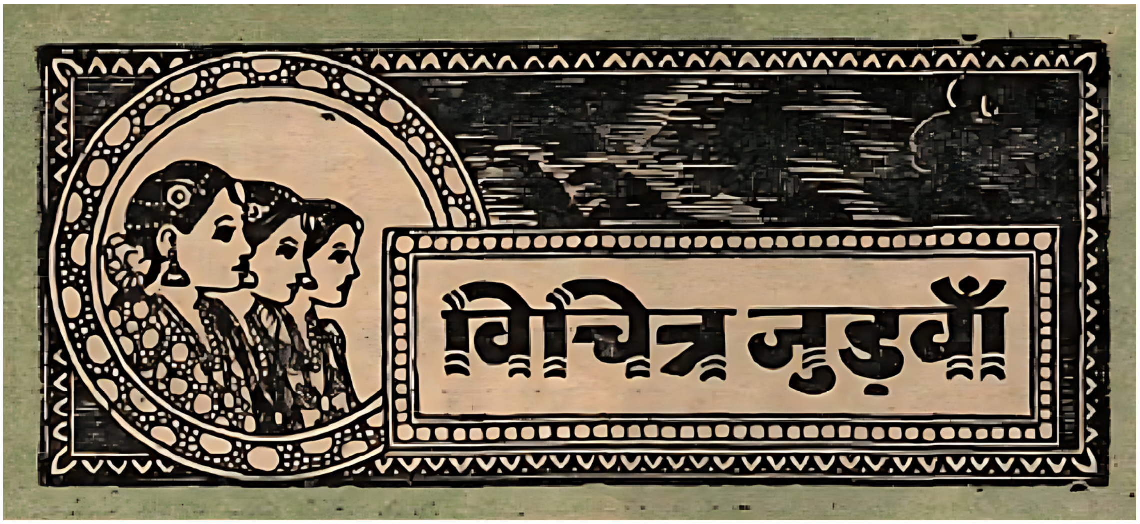
तब वट-पत्र पर आराम से सोए हुए बिघ्नेश्वर ने मुसकुरा कर एक बार अपनी सूँड डुलाई और कहा- "ब्रह्माजी ! सृष्टि के कार्य में सहायता करना हरेक देवता का धर्म है। सृष्टि करना आपका काम है तो उसकी रक्षा करना दूसरों का। मेरे रहते आप को डर किस बात का ? लीजिए ! मैं आप को प्रणव मन्त्र का उपदेश करता हूँ। इस का जाप करके आप फिर से सृष्टि का कार्य प्रारम्भ कीजिए। इस बार आपके काम में कोई विघ्न नहीं पड़ेंगे।" यह कह कर गणेशजी अदृश्य हो गए।

गणेशजीके कहने के अनुसार ब्रह्माने प्रणव मन्त्र का जाप किया और फिर से सृष्टि का कार्य प्रारम्भ किया। इस बार किसी तरह की विघ्न-बाधा उपस्थित न हुई। काम जैसे चाहते थे, वैसा होने लगा। ब्रह्माने सोचा यह सब गणेशजी की कृपा है।" यह सोच कर वे रोज विघ्नेश का ध्यान करने लगे और तब अपना काम शुरू करने लगे। सिर्फ वे ही नहीं, उनकी सृष्टि के सभी देव-गण और चौदहों लोकों के चौरासी योनियों वाले सभी जीव पहले गणेशजी का ध्यान करके फिर अपना अपना काम शुरू करने लगे।

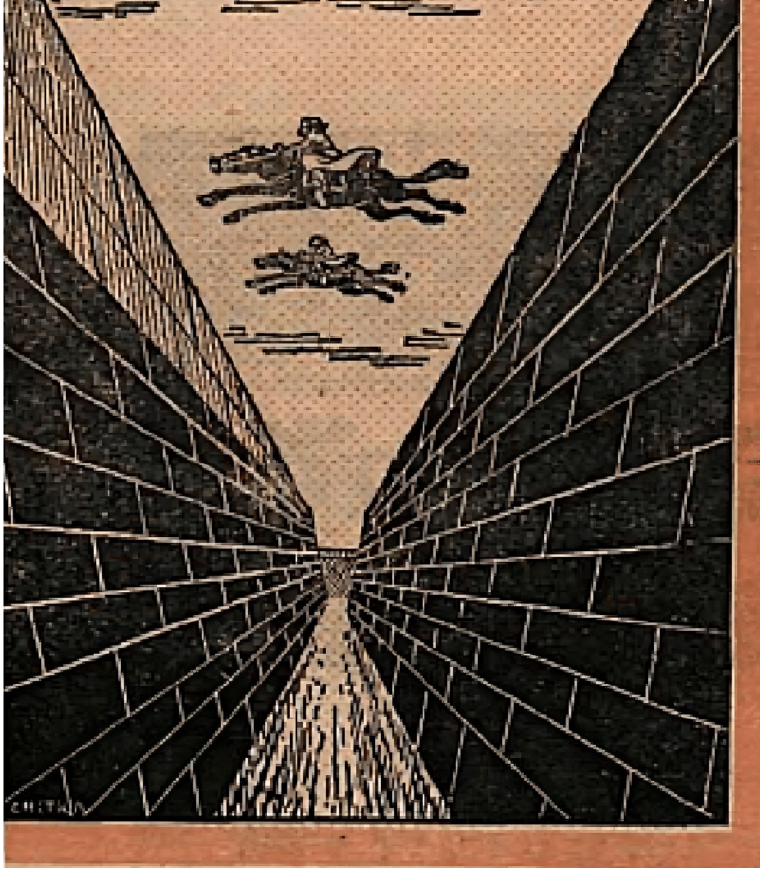
अब सोचो कि जब ब्रह्मा खुद ही उस विघ्नेश की कृपा के बिना सृष्टि का काम प्रारम्भ नहीं कर सके तो फिर अदने आदमी की बात ही क्या है ? इसीलिए गणेशजी के अवतार के दिन, याने भाद्रपद की शुक्ल चतुर्थी को एक पर्व-दिन मान कर उस रोज सभी हिन्दू उस देवता की पूजा करते हैं। इसी से लोगों का यह विश्वास भी है कि गणेशजी की कृपा होने पर वे मनुष्यों के मन की इच्छाएँ पूर्ण कर देते हैं। इसी से अपूर्व महिमा वाले गणेशजी की पूजा भारत-भर के सभी प्रान्तों में पुराने जमाने से ही चलती आई है और आज भी चलती है।

इसलिए आओ ! हम भी निश्चय कर लें कि अगली बार जब बिघ्नेष की पूजा करेंगे, तो उनसे ऐसे वर माँगेंगे, जिससे सिर्फ हमारा ही नहीं, सारे संसार का कल्याण हो !





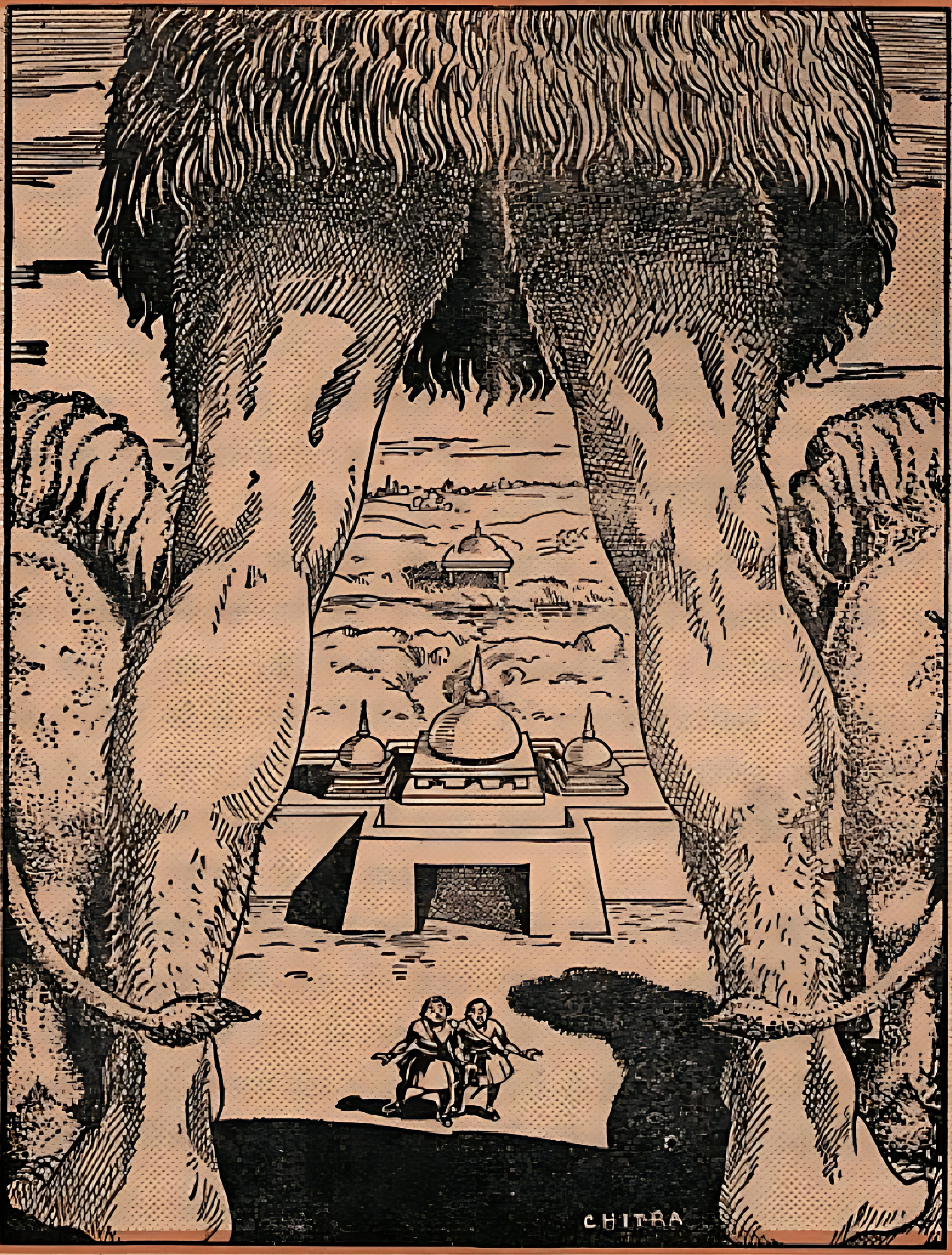
ज्यों ही उदय अचानक गायब हो गया त्यों ही प्रदोष और निशीथ ने अपने घोड़ों की लगामें खींच लीं और धीरे धीरे साबधान होकर आगे बढ़ने लगे। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें उस महल के आगे एक बड़ी खाई दिखाई दी। बस, दोनों भाइयों ने जान लिया कि उदय भी अपने घोड़े के साथ उसी में गिर गया होगा। लेकिन उस अँधेरी और बहुत ही गहरी खाई में उदय या उसके घोड़े का कोई चिह्न न था । उन्हें कुछ न सूझा कि क्या किया जाए ? उन्होंने सोचा कि पहले महल में तो प्रवेश करें, पीछे जो होगा देखा जाएगा। लेकिन उस खाई की चौड़ाई भी कुछ कम न थी। उन्होंने सोचा- "पहले यह जान लेना चाहिए कि यह खाई कहाँ शुरू होती है और कहाँ अन्त होती है। तब हम इस महल में आसानी से प्रवेश कर जाएँगे।" इस इरादे से वे घोड़ों से उतर कर, उनकी लगामें थाम कर पीछे पीछे ले जाते हुए उस खाई के किनारे किनारे चलने लगे। लेकिन बहुत दूर जाने पर भी उन्हें ओर छोर न दिखाई पड़ा। अन्त में वे जहाँ से



चले थे वहीं पहुँच गए। इससे वे जान गए कि उस खाई का कोई ओर छोर नहीं है और वह खोदी गई है लोगों को महल में प्रवेश करने से रोकने के लिए ही। बड़ी देर तक सोचने-विचारने पर भी जब उन्हें उसे लाँघ कर महल में प्रवेश करने का कोई उपाय न सूझा, तो अन्त में प्रदोष ने कहा-"भैया ! भैया ! हमें किसी न किसी तरह इस खाई को लाँघ कर ही जाना होगा। हम घोड़ों को दौड़ाते आएँगे और छलाँग मार कर इसे पार कर जाएँगे। पार कर सके तो कोई बात ही नहीं; अगर नहीं पार कर सके तो इस खाई में उदय की तलाश करेंगे।" इस तरह उसने अपने भाई को बढ़ावा दिया। निशीथ ने भी उसकी बात मान ली। दोनों घोड़ों को मोड़ कर कुछ दूर पीछे लौट गए और वहाँ से उनको सरपट दौड़ाते हुए आए और एक ही छलाँग में खाई पार कर गए।

सुयोग से वे दोनों बिना किसी दुर्घटना के खाई लाँघ गए। "आसार अच्छे जान पड़े। अब कोई चिन्ता नहीं। हम महल में बेखटके प्रवेश कर जाएँगे।" दोनों भाइयों ने सोचा और वे खुशी-खुशी महल में घुस गए। महल बिलकुल सुनसान पड़ा था। उसमें अनगिनत दरवाजे थे; लेकिन किसी में किवाड़ नहीं थे। जब वे दोनों एक-एक दरवाजे से होते हुए जाने लगे तो दोनों ओर आदमियों की सी पत्थर की मूरतें दिखाई दीं।

अन्त में वे एक बहुत ही बड़े दरवाजे के पास पहुँचे। वास्तव में वह दरवाज़ा नहीं था। एक भीमाकार दैत्य की, जो आसमान को छूता हुआ खड़े खड़े सो रहा था, दो


CHITRA



टाँगें थीं। नीचे से देखने वालों को वह दरवाजा ही जान पड़ता था। दैत्य के दोनों ओर दो शेरों की मूरतें थी। वे जीती-जागतीं मालूम होती थीं। देखते ही लगता था जैसे अभी ऊपर उछल आएँगी। उन्हें देख कर दोनों भाइयों के मुँह से अचानक एक चीख निकल गई।

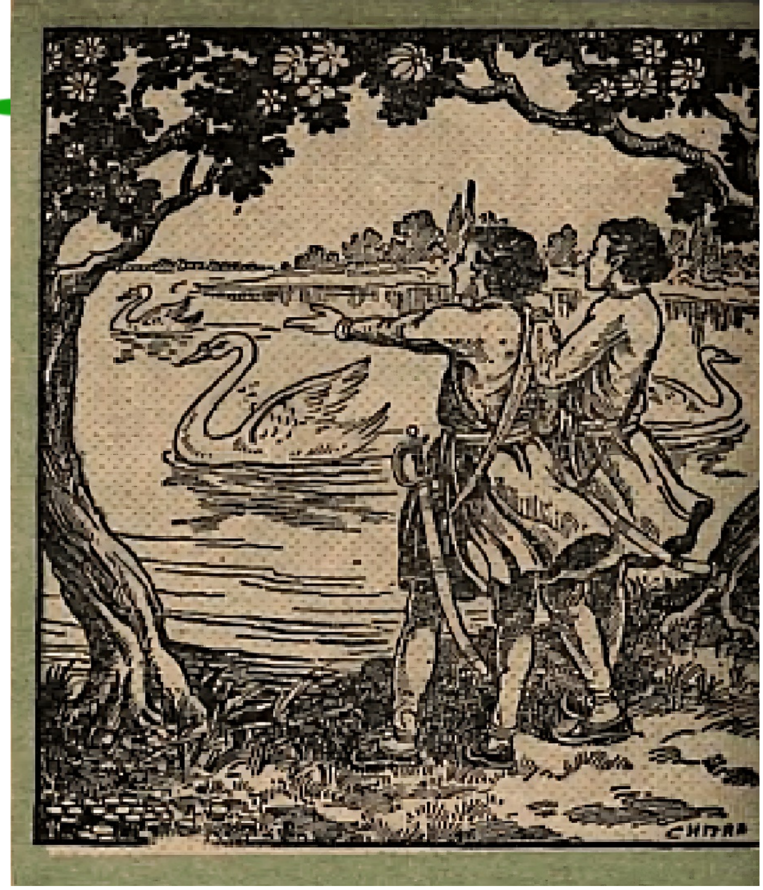
चीख सुनते ही दैत्य की नींद टूट गई। उसने प्रदोष और निशीथ को पकड़ कर उठा लिया और उल्लास के साथ कहा-"मेरे लिए दो और मूरतें !" यह बात सुनते ही दोनों भाई समझ गए कि आते समय जितनी मूरतें देखीं थी, वे किसी समय सजीव ही रही होंगी। दैत्य के जादू-टोने से ऐसी हो गई हैं। प्रदोष और निशीथ को भारी दुःख हुआ कि वे क्यों आकर इस तरह दैत्य के चंगुल में फँस गए? लेकिन अब सोच करने से क्या फायदा था?

अत में उन्होंने सोचा-"मनुष्य के जीवन में सङ्कट तो आते ही रहते हैं। अपने बुद्धि-बल से उन पर विजय पाने में ही उसकी बहादुरी है।"

यह सोच कर उन्होंने धीरज धारण किया। "हम बार बार मरेंगे नहीं। मरना तो एक ही बार है ! देखता हूँ-यह दैत्य मेरे धोखे में आता है कि नहीं ?" पैनी बुद्धि वाले निशीथ ने सोचा। यह सोच कर उसने दैत्य से कहा -"अजी ! तुमने हमें क्या समझ लिया है ? क्या हम कोई चोर उचक्के हैं? एक दाढ़ी वाले ने तुमको एक सन्देश कहने को हमें भेजा है। इसलिए....." वह और भी कुछ कहना ही चाहता था कि दैत्य ने बड़ी उतावली के साथ कहा-"क्या वह दाढ़ी वाला अभी जीता-जागता

है ? इतने दिनों से वह लौट कर नहीं आया। इसलिए हमने सोचा कि वह शायद किसी दुर्घटना में मर गया होगा। क्या उसने कुछ सन्देशा भेजा है ? जल्दी सुनाओ।"

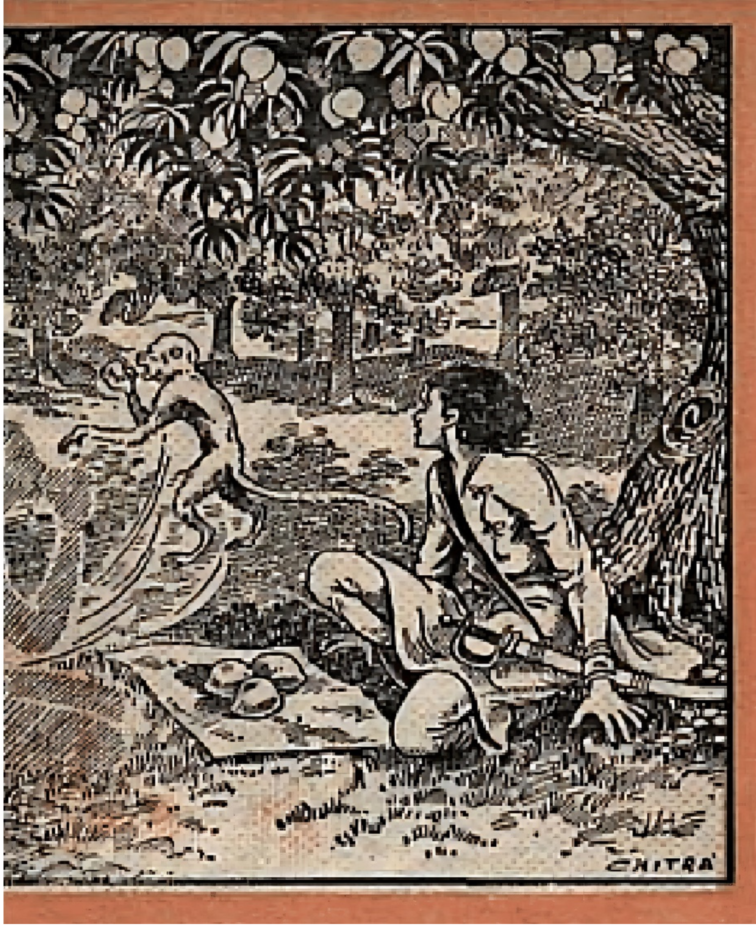
तब निशीथ ने उसका सन्देह दूर करते हुए कहा-"दाढ़ी वाला सकुशल है। लेकिन मालूम होता है कि किसी ने उसके जीवन का रहस्य जान लिया है। इतना ही नहीं; किसी ने उसके अञ्जन, बुकनियाँ और जादू का तौलिया भी चुरा लिया है। इन चीजों के बिना एक पल भी उसका काम नहीं चल सकता। इसलिए उसने तुमसे और कुछ अञ्जन और बुकनियाँ वगैरह जल्दी माँग भेजी हैं।" यह सुन कर दैत्य ने एक लम्बी साँस खींच कर कहा-"ओह! ऐसी बुरी हालत में पड़ गया है ! इसी से वह लौट नहीं सका। खैर, कुशल समझो कि उसकी माला नहीं चुराई। अगर माला भी गई होती तो बेचारे का बचना नामुमकिन हो जाता। अच्छा! मैं उसके पास अभी जाता हूँ। तुम लोग यहीं खड़े रह कर पहरा देना और देखना, कोई अन्दर



न आने पाए !" यह कह कर दैत्य वहाँ से चला गया।

उससे पिण्ड छूटते ही निशीथ और प्रदोष खुशी के मारे उछल पड़े। उन्हें बड़ा आनन्द हुआ कि दैत्य उनके चकमे में आ गया। निशीथ ने कहा-"अब हमें वक्त जाया न करना चाहिए। दैत्य के लौटने के पहले ही हमें इस महल का भेद जान लेना चाहिए।"

दोनों भाई आगे बढ़ चले। थोड़ी दूर जाकर वे जब आखिरी दरवाजे पर पहुँचे तो उन्हें अपने सामने एक बड़ा सरोवर दिखाई दिया। उसमें अत्यन्त सुन्दर हंस तैर रहे थे।



दोनों भाई सबेरे से भटक भटक कर थके हुए थे। उन्हें बड़े जोर की प्यास भी लगी हुई थी। इसलिए सरोवर को देखते ही प्रदोष की जान में जान आ गई। तुरन्त पानी में उतर कर वह चुल्लू से पानी पीने लगा ! लेकिन आश्चर्य ! पानी की पहली घूँट गले से उतरते ही वह पत्थर की मूरत बन गया।

देखते ही देखते भाई जब पत्थर बन गया तो निशीथ निस्तब्ध खड़ा रह गया। अच्छा हुआ कि मैंने भी यह पानी न पिया। नहीं तो मैं भी पत्थर बन जाता ! वैसे उदय तो गायब हो ही गया था। अब प्रदोष का यह हाल हुआ। अगर मैं भी इस माया में फँस जाता तो हम भाइयों की कोई निशानी न रह जाती।" निशीथ चिन्तित हो उठा। कोई उपाय न देख वह आगे बढ़ा। और थोड़ी देर में वह एक सुन्दर बाग में पहुँच गया। उस में तरह तरह के फल से लदे पेड़ खड़े थे। उनमें सबसे सुन्दर था एक आम का पेड़। उसमें इतने फल लटके हुए थे कि पत्तियाँ कहीं दिखाई भी नहीं पड़ती थीं; उसकी सभी डालें फलों के भार से झुक कर धरती को चूम रही थीं।

निशीथ को अब बड़े जोर की भूख लग चली थी। इसलिए उसने तुरन्त कुछ फल तोड़ लिए और उन्हें आगे डाल कर खाने बैठा। लेकिन आश्चर्य ! पहले फल में दाँत मारते ही वह एक बन्दर बन गया। उसने मन में सोचा "हाय भगवन ! न जाने, और क्या क्या भोगना पड़ेगा ? दैत्य की माया कौन जान सकता है ?" यह सोच कर निशीथ ने बाकी फलों को छुआ तक नहीं। वह वहाँ से लौट गया और जहाँ उसका भाई पत्थर बना

पड़ा हुआ था, उस सरोवर के चारों ओर चक्कर लगाने लगा।

इतने में उसे सरोबर में से 'छप छप' की आवाज़ सुनाई दी। थोड़ी देर में एक हंस तैर कर वानर-रूप धरे हुए निशीथ की ओर आने लगा।

वह हंस किनारे सूखी जमीन पर आते ही आदमी बन गया। यह देख कर निशीथ खुशी के मारे उछल पड़ा। क्योंकि वह हंस और कोई नहीं, उसका भाई उदय ही था। कहाँ उन्होंने समझ लिया था कि वह खाई में गिर गया है और कहाँ वह हंस रूप में यहाँ आ निकला !

उदय ने किनारे आते ही प्रदोष की पत्थर की मूरत देखी और निश्चेष्ट खड़ा रह गया। अब निशीथ वानर रूप में जाकर अपने भाई के पैरों से लिपट गया। पहले तो उदय ने उसे कोई मामूली बन्दर समझ कर अपने पैर छुड़ा लिए। लेकिन फिर उसे अपने पैरों से लिपटते देख कर उसने सोचा कि हो न हो, उसका भाई निशीथ ही इस रूप में है।



लेकिन वह क्या करे? उसे कैसे मालूम हो कि प्रदोष पत्थर कैसे बन गया और यह बन्दर उसका भाई निशीथ है कि नहीं ?

थोड़ी देर तक यों चिन्ता में पड़े रहने के बाद उसे अचानक एक उपाय सूझ गया और उसने अपनी जेब से अञ्जन और बुकनियाँ बाहर निकालीं। उसने प्रदोष की मूरत पर काली बुकनी छिड़क दी। लेकिन कोई फायदा न हुआ। तब उसने हरा अञ्जन मल दिया। लेकिन कुछ न हुआ। लाल अञ्जन लगा दिया। लेकिन मूरत वैसे ही रह गई।

इस तरह अनेक प्रयत्न करने पर भी जब कोई फायदा न हुआ तो उदय ने वानर-रूप धरे हुए निशीथ पर उनका प्रयोग किया। लेकिन उस पर भी उनका कुछ असर न हुआ। बन्दर बन्दर ही बना रह गया।

उदय हताश हो सरोवर के किनारे वहीं बैठ गया और सोच में डूब गया। उसी समय सरोवर का एक हंस उदय के नजदीक से गुज़रा। उदय ने हाथ बढ़ा कर उसे पकड़ लिया और बाहर निकाल लिया। बाहर आते ही वह हंस एक सुन्दर कन्या बन गया।

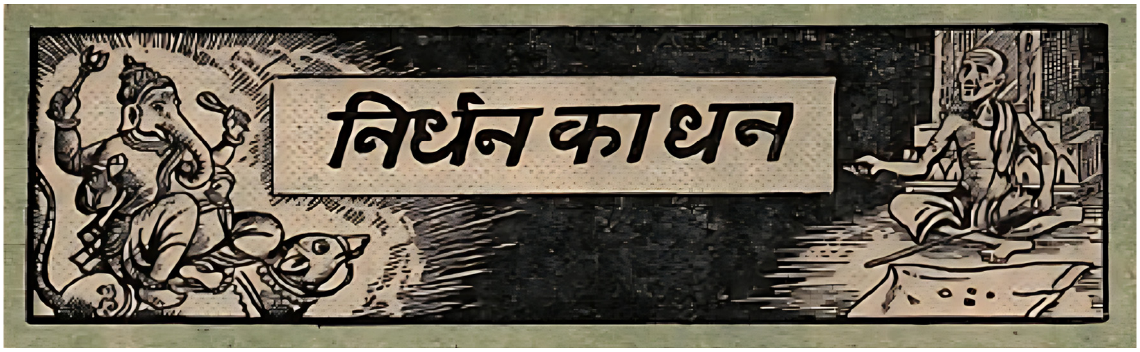
वह लड़की शरम से सर झुका कर हट कर खड़ी हो गई। उदय उससे पूछने लगा-"तुम कौन हो ? तुम हंस-रूप में इस सरोवर में कैसे आ गई?"

इतने में उसे एक कर्कश कण्ठ सुनाई दिया-"कहाँ हो रे! तुम दोनों?"

यह गरज सुनते ही उस लड़की ने जान लिया कि वह उस महल पर पहरा देने वाले दैत्य की आवाज है। उसने घबरा कर उदय से कहा-"यह सब पीछे बता दूँगी। पहले चलो, भाग कर अपनी जान बचा लें !" यह कह कर उसने प्रदोष की पत्थर की मूरत और उसके नजदीक खड़े वानर निशीथ को सरोवर में धकेल दिया। तुरन्त वे दोनों भी हंस बन गए। फिर उसने उदय का हाथ पकड़ लिया और उसके साथ सरोवर में कूद गई। तुरन्त वे भी हंस बन गए।

[हंस-रूप में वह लड़की कौन थी ? जुड़वें भाइयों को फिर मनुष्य स्वरूप मिला कि नहीं ? वे जिस माया- महल में फँसे हुए थे वह किसकी जायदाद थी ? आदि प्रश्नों के उत्तर अगले अङ्क में पाइए।]





कहते हैं कि किसी समय रामशर्मा नामक एक गरीब ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा भक्त आदमी था। बड़ा सन्तोषी जीव था। उसकी स्त्री सावित्री बड़ी पतिव्रता थी। उसके तीन बेटे थे और एक बेटी। गरीब तो था ही। कुछ दिन बाद रामशर्मा अन्धा भी हो गया।

बेचारा अब बाल-बच्चों को पालने के लिए गाँव के बाहर महादेव के मन्दिर में अङ्गोछा बिछा कर बैठ जाता। मन्दिर में आने जाने वाले उस पर दया कर कुछ न कुछ दे दिया करते थे। रोज सवेरे उसकी स्त्री या कोई लड़का-लड़की उसका हाथ पकड़ कर मन्दिर में पहुँचा जाते और शाम को आकर घर ले जाते।

रामशर्मा का परिवार रहता था माधोराम बनिए के घर में। छोटी जगह थी। किराया एक रुपया माहवार लेता था। माधोराम बड़ा कन्जूस था। महीना खतम होते ही अगर किराया नहीं मिलता तो वह ब्राह्मण को बहुत तङ्ग करता था।

एक दिन साँझ हो गई; लेकिन ब्राह्मण को ले जाने के लिए घर से कोई नहीं आया। वह राह देखता रहा। बड़ी देर बाद उसकी पत्नी सिसकती हुई वहाँ पहुँची।

ब्राह्मण ने पूछा-"क्या हुआ है ?" "और क्या होगा ? सेठ ने अपने नौकर को भेजा किराया वसूल करने के लिए। उस बेरहम ने घर का सारा सामान उठा कर सड़क पर फेंक दिया और हम सबको गरदनिया देकर बाहर निकाल दिया।" आञ्चल से आँसू पोंछती हुई वह कहने लगी। लेकिन बेचारा ब्राह्मण क्या करता ? इसलिए दोनों रोते-धोते हुए उठे और बाल-बच्चों को लेकर सेठ के घर के सामने एक पेड़ के नीचे बैठ गए।

कुमारी सुमन



महादेव इनकार न कर सके। उन्होंने कहा-"अच्छा !"

माधोराम भी रोज शिवालय जाया करता था। ब्राह्मण जिस समय पेड़ के नीचे बैठा था, उस समय माधोराम मन्दिर में ध्यान कर रहा था। उस दिन उसने एक अद्‌भुत बात देखी। उसने देखा कि गणेश जी की मूरत से महादेव की मूरत कहती है- "उस अन्धे ब्राह्मण को, जो यहाँ रोज़ बैठा करता है, कल लखपती बना दो !" "यह कौन बड़ी बात है ? जरूर वह लखपती हो जाएगा।" गणेश जी जवाब देते हैं। बस, ये बातें बनिए के कानों में गुञ्जने लगीं। वह वहाँ से तुरन्त निकला और झपटता हुआ घर पहुँचा।

संयोग से उसी समय महादेव और भवानी आकाश मार्ग से कहीं जा रहे थे। दुखिया ब्राह्मणी की पुकार भवानी के कानों में पड़ी। उन्होंने अवढर दानी शिव से कहा-"देव ! देखिए ! आपके ये दोनों भक्त कितने दुख में पड़े हैं? इनका कष्ट मुझसे देखा नहीं जाता। कल अवश्य इन्हें लखपती बना दीजिए!"

"देवी ! यह ब्राह्मण अपने कर्मों का फल भुगत रहा है। लेकिन अब शीघ्र ही इसके सब सङ्कट दूर हो जाएँगे और अच्छे दिन आएँगे।" महादेव ने जवाब दिया। "उन अच्छे दिनों को अभी क्यों नहीं आने देते ?" भवानी हठ करने लगीं।

तब तक अन्धेरा हो गया था। माधोराम ने एक लालटेन हाथ में ली और पेड़ के नीचे पड़े ब्राह्मण के पास पहुँचा। उसने उसे विनय-पूर्वक प्रणाम किया और कहा- "ब्राह्मण देवता ! मुझे अभी मालूम हुआ है कि मेरे बेवकूफ नौकर ने आपको बहुत तङ्ग किया है। वह बड़ा उजड्ड गँवार है। उसे अक्ल तो छू तक नहीं गई है। इसलिए आप उसे माफ करें और जो बीती है उसे भूल

जाएँ। मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप फिर आकर मेरे घर में रहें। अब कोई किराए की बात भी नहीं चलाएगा। आप निस्सङ्कोच आकर मेरे घर में रहें।" यह कह कर उसने उनका सारा सामान उठा लिया और ले जाकर दालान में धर दिया।

इतना ही नहीं; उन लोगों के आ जाने के बाद उसने दस रुपए ब्राह्मण को दक्षिणा में दिए और विनय-पूर्वक आशीर्वाद माँगा। गरीब होने पर भी रामशर्मा को रुपए का लालच नहीं था। उसने इनकार कर दिया। तब बनिए ने सौ रुपए निकाले और कहा-"यह तो आप को लेना ही होगा। बदले में मैं आपके आशीर्वाद के सिवा कुछ नहीं चाहता।"

लेकिन ब्राह्मण ने सौ रुपए लेने से भी इनकार कर दिया। यह देख बनिए ने कहा-"आप हिचक क्यों रहे हैं ! सङ्कोच होता हो तो रुपए आप दान के रूप में न लीजिए। इसके बदले आपको कल जो कुछ मन्दिर में मिल जाय, वह मुझे दे दीजिएगा !"

लेकिन ब्राह्मण ने फिर भी रुपए लेना स्वीकार न किया। उधर उस लोभी



बनिए ने भी उसका पिण्ड न छोड़ा। ज्यों-ज्यों ब्राह्मण इनकार करता गया, त्यों-त्यों वह रकम बढ़ाता गया। यहाँ तक कि वह पचहत्तर हजार तक देने को तैयार हो गया। फिर भी ब्राह्मण टस से मस न हुआ।

तब उसकी पत्नी ने कहा-"सेठ जी ! आपको इनसे क्या मतलब? आप पचहत्तर हजार मुझे दे दीजिए। इन्हें राजी करने का भार मैं अपने ऊपर लेती हूँ।"

बनिए ने सोचा-"मुझे बैठे-बैठे पच्चीस हजार का मुनाफा हो रहा है।" इसलिए उसने पचहत्तर हजार रुपए तुरन्त ब्राह्मण को गिन दिए।

दूसरे दिन माधोराम ब्राह्मण के साथ मन्दिर में गया। वह टक लगाए देखने लगा कि ब्राह्मण को कब एक लाख मिलेंगे और कब उसे पच्चीस हज़ार का नफा होगा। लेकिन साँझ तक बैठे रहने पर भी उस दिन ब्राह्मण को कुछ न मिला। हाँ, किसी गरीब भक्त ने दो सड़े-गले केले अवश्य उसके हाथ में रख दिए। यहाँ तक कि ब्राह्मण के घर लौटने का समय हो गया।

बनिए का क्रोध पल-पल बढ़ता जा रहा था। वह उठा और गणेशजी के पास जाकर बोला-"क्यों गणेश ! तुमने कहा था न कि ब्राह्मण को आज एक लाख रुपए मिलेंगे ? कहाँ हैं वे एक लाख रुपए ? जानते हो, बेचारा ब्राह्मण कितनी तङ्गी में है ? देवता होकर अगर तुम्हीं इस तरह वादा तोड़ने लग जाओगे तो संसार का क्या हाल होगा ?"

इस तरह बकते हुए उसने गणेश की सूँड़ पकड़ ली। बस, माधोराम का हाथ सूँड से चिपक गया। उसने हाथ छुड़ाने की लाख कोशिश की; लेकिन वह नहीं छूटा। इतने में उसने सुना कि महादेवजी फिर गणेश जी से पूछ रहे हैं-"बेटा ! ब्राह्मण के बारे में क्या हुआ ?" "उसे अब तक पचहत्तर हजार मिल चुके हैं। बाकी पच्चीस हज़ार अभी मिलने जा रहे है !" गणेश जी कह रहे हैं।

गणेश जी की बात सुनते ही माधोराम के बदन से पसीना छूटने लगा। उसने तुरन्त ब्राह्मण को पच्चीस हजार देने का इन्तज़ाम किया। ब्राह्मण के हाथ में पच्चीस हज़ार पड़ते ही बनिए का हाथ छूट गया और वह शरम से सर झुकाए घर लौट गया।

महादेव जी की कृपा से ब्राह्मण की आँखें भी अच्छी हो गई। देखी भगवान की लीला ! सचमुच भगवान की कृपा ही निर्धन का धन है।





पुराने जमाने में पण्ढरीपुर में एक भक्त ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी कमला भी बड़ी पतिव्रता थी। वे स्त्री-पुरुष दोनों रोज बड़ी भक्ति के साथ देवी रुक्मिणी की पूजा करते थे। एक दिन देवी उनके सामने प्रत्यक्ष हुई और बोलीं-"मैं तुम दोनों से बहुत खुश हूँ। बोलो ! क्या चाहते हो ?"

तब उन दोनों ने कहा- 'देवी! दुनियाँ में ऐसी कौन सी बात है जो तुमसे छिपी हो? हमें ऐसी कोई चीज़ दे दो जिस से हमारी जिन्दगी आराम से कट जाय !" तब देवी ने उनको 'पारस' पत्थर दिया। उस पत्थर का प्रभाव ऐसा था कि जो चीज़ उससे छू जाती तुरन्त सोना बन जाती। अब उस ब्राह्मण को किस चीज की कमी हो सकती थी ! उसके दिन आराम गुजरने लगे। हाँ, उस ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से हिदायत कर दी थी कि इस बात की किसी को भनक भी न लग जाय। इसलिए वे देखने में अब भी गरीबों का सा ही व्यवहार करते थे।

एक दिन नदी के घाट पर प्रसिद्ध भक्त नामदेव की पत्नी से ब्राह्मणी कमला की भेंट हो गई। दोनों में बातचीत होने लगी। बातचीत के सिलसिले में नामदेव की पत्नी ने माथा ठोंक कर कहा -"बहन ! हमारी गिरस्ती की तो बात ही न पूछो। पेट पालना भी मुश्किल हो गया है। मेरे पतिदेव वैरागी होकर भटकते फिरते हैं। पैसा कमाने का नाम नहीं लेते। न जाने, हमारी नैया कैसे पार लगेगी ?"

यह सुन कर ब्राह्मणी ने कहा-"अच्छा, ऐसी बात है बहन ! अगर तुम कसम खा लो कि किसी से न कहोगी तो मैं एक उपाय बता दूँ।" यह कह कर उसने कसम खिलाई और

मोहन सिंह



फिर कहा-"बहन ! देवी रुक्मिणी की पूजा करने पर उन्होंने पारस नामक एक अमूल्य पत्थर हमें दिया है। उसका प्रभाव ऐसा है कि उससे छूकर धूल भी सोना बन जाती है ! उसी की कृपा से आजकल हमें किसी चीज़ की कमी नहीं है। मैं वह पारस पत्थर तुम्हें दे दूँगी। तुम उससे जितना सोना चाहो बना लेना और उसे फिर मुझे लौटा देना। लेकिन यह रहस्य किसी से बताना नहीं।"

यह कह कर वह जल्दी-जल्दी घर गई और पारस लाकर नामदेव की पत्नी को दे दिया।

नामदेव की पत्नी फूली न समाई। जिस चीज़ पर नजर पड़ जाती सोना बना लेती और उसे बेच कर सब तरह के सामान खरीद लेती। इस तरह वह सुख से रहने लगी। इस धूम-धाम में वह पारस पत्थर ब्राह्मणी को लौटाना भूल गई।

आखिर कुछ दिन बाद नामदेव परदेश से घर लौटा। सारे घर में सोना भरा देख कर वह दङ्ग रह गया। "यह सारा सोना कहाँ से आया? किसने दिया?" रसोई- घर में जाकर उसने पत्नी से पूछा।

"यह सब पीछे बताऊँगी। आप पहले खा पी लीजिए !" उसकी पत्नी ने कहा।

नामदेव आग-बबूला हो गया और बोला-"यहाँ यह दाल नहीं गलेगी ! पहले बता दे कि यह सोना कहाँ से आया ?"

आखिर डर के मारे उसकी पत्नी ने पारस का रहस्य उसे बता दिया।

तब नामदेव ने कहा-"पगली कहीं की ! तूने यह क्या किया? तू नहीं जानती कि धन एक रोग के समान है? क्या तूने 'पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम' वाली लोकोक्ति नहीं सुनी? ला ! वह पारस मुझे दे दे !"

यह कह कर उसने पारस हाथ में लिया और नदी के किनारे जाकर गहरे पानी में उसे फेंक दिया। तब हलके मन से घर लौट आया।



इधर तो यह हालत थी, उधर वह ब्राह्मण भी बहुत दिन तक परदेश में रह कर घर लौट आया। उसे देखते ही उसकी पत्नी आँसू बहाने लगी। उसने पूछा कि क्यों रोती हो ? तब लाचार होकर ब्राह्मणी ने सारी कहानी उससे कह दी।

अब ब्राह्मण ने क्रोध से पागल होकर कहा-"अरी कलमुँही ! इसीलिए कहा जाता है कि स्त्री के पेट में कोई बात नहीं पचती। मैंने तुम से पहले ही कह दिया था कि किसी के कान में इसकी भनक न पड़े। लेकिन तूने भेद ही नहीं खोला, बल्कि वह पत्थर भी खो दिया। अब तुझे क्या दण्ड दिया जाय ?"

यह कह कर उसने तुरन्त नामदेव के घर जाकर कहा-"मेरा प्राण-प्रिय पारस मुझे लौटा दो। उसके बिना मैं जी नहीं सकता। अगर तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं बाल बच्चों सहित तुम्हारे दरवाजे पर धरना दे दूँगा और भूख-प्यास से जान दे दूँगा। तुम्हें ब्रह्म हत्या का पाप लग जाएगा।"

इतना ही नहीं, वह ब्राह्मण सचमुच नामदेव के यहाँ धरना देकर बैठ गया। तब नामदेव ने कहा- "हे ब्राह्मणोत्तम ! तुम्हारा पारस तो मैंने नदी में फेंक दिया ! मैंने हम दोनों की भलाई के लिए ही ऐसा किया। धन-वैभव भक्तों को भगवान से दूर करने का साधन है। अज्ञान-वश लोग उसके पीछे दौड़ते हैं। तुम्हारे घर में जो विष-वृक्ष बोया गया उसकी कलम

हमारे घर में भी लग गई। इसलिए मैंने उसे समूल उखाड़ फेंका।"

यों नामदेव ने उस ब्राह्मण का मन पारस की तरफ से मोड़ना चाहा। लेकिन ब्राह्मण को इन बातों से सन्तोष न हुआ।

तब फिर नामदेव ने कहा "अच्छा, मेरे साथ नदी किनारे चलो ! तुम्हारा पारस खोज ला दूँगा।" यह कह कर वह उसे साथ लेकर नदी किनारे गया।

ब्राह्मण किनारे खड़ा रहा। नामदेव ने नदी में कूद कर डुबकी लगाई और मुठ्ठी भर कङ्कड-पत्थर ले आया। "हे ब्राह्मण ! मेरी मुठ्ठी में जितने पत्थर हैं सब पारस हैं। तुम इनमें से अपना पारस चुन लो। अगर तुमने गलती से कोई दूसरा पारस चुन लिया तो तुम्हारा सिर टूक टूक हो जाएगा।" किनारे आकर नामदेव ने ब्राह्मण से कहा और अपनी मुठ्ठी खोली।

उसके हाथ में सभी पारस थे, सभी जगमगा रहे थे, सभी एक समान थे। सभी में ऐसा प्रभाव था कि किसी भी चीज़ को छूकर सोना बना दें। ब्राह्मण ने बहुत दिमाग लड़ाया। लेकिन अपना पारस न पहचान सका। आखिर उसने सभी पत्थर नदी में फेंक दिए। भगवान की कृपा से उसे ज्ञानोदय हुआ। वह अपने अज्ञान से शर्मिन्दा होकर नामदेव के पैरों पर गिर पड़ा और बोला-"मैं ये मामूली कङ्कड-पत्थर अब नहीं चाहता। मुझे वह अनमोल रतन दो जिसके प्रकाश से मन का अन्धेरा दूर हो जाता है।" तब नामदेव ने उसे प्रेम के साथ उठा कर गले लगा लिया और पञ्चाक्षरी मन्त्र का उपदेश देकर कृतार्थ किया।





कूर्म द्वीप के राजा के यहाँ एक विश्वास-पात्र मन्त्री रहता था जिसका नाम था दूरदर्शी। उसकी सहायता से राजा ने कई साल तक निर्विघ्न राज्य-पालन किया। अन्त में एक दिन उसने मन्त्री को बुला कर कहा -"दूरदर्शी ! मेरा अन्त-काल निकट आ गया। इसलिए मैं राज्य का सारा भार तुम्हें सौंपता हूँ। प्राण-प्यारे लाड़ले रूपधर को भी मैं तुम्हें सौंपता हूँ। तुम्हारी इच्छा, तुम जो करो !

और सुन लो ! लड़के को तुम जहाँ चाहो, वहाँ जाने देना ! लेकिन कभी उसे महल के पूरब के आखिरी कमरे में कदम न रखने देना ! नहीं तो उस पर भारी सङ्कट आ जाएगा !" जब दूरदर्शी ने वादा किया कि वह उनके इच्छानुसार सारा भार सम्हाल लेगा तब राजा ने निश्चिन्त होकर सुख की साँस ली और उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। धीरे-धीरे रूपधर बड़ा होने लगा और मन्त्री उसे राज-काज सिखाने लगा। उसने उसे राज के सारे रहस्य बता दिए और किले के सभी गुप्त भवन दिखा दिए। लेकिन उसने उसे कभी पूरब वाले कमरे में नहीं जाने दिया। धीरे-धीरे रूपधर के मन में इसका रहस्य जानने की इच्छा प्रबल हो गई और उसकी उतावली बढ़ती गई।

आखिर एक दिन उसने मन्त्री की अनुपस्थिति में उस कमरे का दरवाजा खोला। उसमें कुछ नहीं था। लेकिन हाँ, एक अपूर्व सुन्दरी की तस्वीर सामने की दीवार पर टँगी हुई थी। वह तस्वीर देखते ही रूपधर मूर्छित हो गया। थोड़ी देर बाद उसने होश में आकर सोचा- "यह सुन्दरी कौन है ? क्या सचमुच ऐसी राजकुमारी इस

दीनदयाल शर्मा



दुनियाँ में हो सकती है ? अगर हो तो उससे व्याह किए बिना यह ज़िन्दगी काहे की ?" उसने तुरन्त जाकर मन्त्री से पूछा कि उस तस्वीर वाली सुन्दरी कौन है ?

मन्त्री ने सोचा-"अब तो सारी पोल खुल गई ! अब छिपाने से क्या फायदा ? महराज ने कहा था कि इससे बड़ा भारी सङ्कट आएगा। आने दो ! अब तो उसका सामना करना ही होगा !" यह सोच कर उसने धीरज धर लिया और यों कहना शुरू किया-"रूपधर ! वह हेम नगर की राजकुमारी स्वर्णलता है। वह जिस किले में रहती है वह सोने का बना हुआ है। उस किले की सभी चीजें सोने की हैं। उस राजकुमारी को सोने से बड़ा प्रेम है। वह जितना सोना चाहे उतना सोना तुम उसे दे सको तो शायद वह तुम्हें पसन्द कर ले।" मन्त्री ने भेद बता दिया।

तुरन्त रूपधर ने सारे राज का सोना इकठ्ठा किया। फिर उसने अनेक कुशल सुनारों को बुला कर उस सोने से तरह-तरह की चीजें बनवाईं। उन चीज़ों को एक बड़े जहाज़ पर लाद कर वह मन्त्री के साथ व्यापारी के भेष में चल पड़ा।

हेम नगर के नज़दीक पहुँच कर मन्त्री ने कुछ चीजें भेंट देने के लिए चुन लीं और उन्हें लेकर राजकुमारी के पास गया। उन चीज़ों को देख कर राजकुमारी मुग्ध हो गई। तब दूरदर्शी ने कहा-"बेटी ! हमारे जहाज़ पर तो ऐसी-ऐसी चीजें हैं कि कुछ कहा नहीं जा सकता। उन्हें तो बस, देख कर ही सन्तोष हो सकता है!" राजकुमारी का मन ललचा गया और उसने सोचा- "चलो; एक बार देख आने में हर्ज तो नहीं है।" यह सोच कर वह वेष बदल कर मन्त्री के साथ चल पड़ी। स्वर्णलता जहाज पर चढ़ कर सोने की

चीजें देखने लगी। उनको देख कर वह परवश हो गई। देख-देख कर आँखें नहीं भरती थीं। इसी बीच रूपधर ने चुपके से लङ्गर उठा दिया और पाल तान दिए। हवा का सहारा पाकर तुरन्त जहाज तीर की तरह चल पड़ा।

स्वर्णलता का चीजें चुनना खतम हुआ और वह लौटने की बात सोचने लगी। पर देखती क्या है कि जहाज़ बीच समुन्दर में पहुँच गया है। वह बेचारी तो अवाक् रह गई। इस कपट से उसका कलेजा फट गया और समुन्दर में कूद पड़ने को उतावली हो उठी। लेकिन रूपधर ने उसका हाथ पकड़ कर रोक लिया और अपना सच्चा परिचय दिया। उसने तस्वीर देख कर अपने मुग्ध हो जाने की कहानी जब उसको शुरू से सुनाई तो स्वर्णलता का हृदय शान्त हुआ और वह बहुत खुश हुई।

इस तरह इधर रूपधर राजकुमारी को सान्त्वना दे रहा था और उधर दूरदर्शी अपने सामने बैठे हुए तीन पञ्छियों की बात-चीत सुन रहा था। वे पञ्छी मनुष्य की भाषा में बोल रहे थे। उनमें से पहले ने कहा-"रूपधर



ने स्वर्णलता का मन जीत तो लिया। लेकिन उसे जल्दी ही उससे बिछुड़ना पड़ेगा। क्योंकि जब यह जहाज़ किनारे से जा लगेगा तो उसी समय राजकुमार को वहाँ एक सुन्दर घोड़ा दिखाई देगा। राजकुमार का उस पर सवारी करने का मन चाहेगा। लेकिन ज्यों ही वह उस पर चढ़ेगा त्यों ही वह घोड़ा राजकुमार को न जाने, कहाँ कहाँ ले जायगा।" "क्या यह सङ्कट टालने की कोई सूरत नहीं ?" दूसरे पञ्छी ने पूछा। "क्यों नहीं ? उस घोड़े की जीन में एक छुरा है। उसे लेकर भोङ्क देने से घोड़ा मर जाएगा और सङ्कट टल जाएगा।" पहले पञ्छी ने जवाब दिया।



तो यह बात राजकुमार को क्यों न बता दी जाय ?" दूसरे पञ्छी ने पूछा। "मुश्किल तो वहीं है। जो यह रहस्य राजकुमार को बताएगा वह पैरों से लेकर कमर तक पत्थर बन जाएगा।" पहले पञ्छी ने तुरन्त जवाब दिया।

इस पर दूसरे पञ्छी ने कहा- "यही नहीं; और एक सङ्कट भी है जो मुझे मालूम है। वह जब तुम्हारे बताए सङ्कट से बच कर किले में पहुँचेगा तो उसे एक कमरे में एक सुन्दर, विष से बुझी राजसी पोशाक दिखाई देगी। राजकुमार का मन मचल जाएगा और वह उसे पहन कर जान दे देगा।" "क्या इस सङ्कट से बचने का कोई उपाय नहीं ?" पहले पञ्छी ने पूछा। "है क्यों नहीं ? राजकुमार के पहनने के पहले ही उस पोशाक को छीन कर जला देना चाहिए। लेकिन जो यह रहस्य उसे बता देगा वह कमर से लेकर छाती तक पत्थर बन जाएगा। इसी से तो मुझे दुख होता है कि यह रहस्य कोई उसे नहीं बता सकेगा।" दूसरे पञ्छी ने जवाब दिया।

तब तीसरे पञ्छी ने कहा-"समझ लो कि किसी तरह सौभाग्य-वश इन दोनों सङ्कटों से राजकुमार पर कोई आँच नहीं आई। फिर भी मुझे एक तीसरे सङ्कट का पता है जिससे राजकुमारी कभी नहीं बच सकेगी।" इतना सुनते ही बाकी दोनों पञ्छियों ने पूछा कि वह सङ्कट क्या है ? तब तीसरे पञ्छी ने कहा-"रूपधर से स्वणलता का विवाह तो हो जाएगा। लेकिन सुहाग-रात को मङ्गलाचार के समय राजकुमारी बेहोश होकर गिर पड़ेगी। तब अगर कोई उसे झट मुँह पे फूँक लेगा तो उसे होश आएगा, नहीं तो नहीं। लेकिन जो यह भेद राजकुमार से बता देगा वह सिर से पैर तक पत्थर बन जाएगा।" यों बात-चीत करके पञ्छी उड़ गए।

दूरदर्शी ने उनकी सारी बातें बड़ी गौर से सुनीं और मन-ही-मन याद कर लीं। जब जहाज़ किनारे पहुँचा तो सचमुच ही एक सुन्दर घोड़ा दिखाई दिया। रूपधर का मन उस पर चढ़ने के लिए मचल उठा। लेकिन उसके चढ़ने के पहले ही मन्त्री घोड़े पर उचक कर बैठ गया और जीन में से छुरा निकाल कर उसको भोंक दिया। घोड़ा तड़प-तड़प कर मर गया। मन्त्री का यह व्यवहार देख कर राजकुमार के मन में दुख हुआ।

लेकिन उसने सोचा कि मन्त्री ने उसकी भलाई के लिए ही ऐसा किया होगा और निश्चिन्त हो गया।

वहाँ से वे सीधे किले में जा पहुँचे। वहाँ एक कमरे में एक सुन्दर पोशाक रखी हुई थी। राजकुमार ने उसे उठा कर पहन लेना चाहा। लेकिन मन्त्री ने झट उसे उसके हाथ से छीन कर जला दिया। मन्त्री के इस काम से राजकुमार के मन को बड़ी ठेस पहुँची। लेकिन उसने मन्त्री को कुछ नहीं कहा।

तीसरे पञ्छी के कहे अनुसार बड़ी धूम-धाम से स्वणलता और



राजकुमार का व्याह हो गया। सुहाग रात को मङ्गलाचार होने लगे। मन्त्री भी वहीं खड़ा था। खूब हँसी-मजाक चल रहा था।

अचानक देखते-देखते राजकुमारी का मुँह पीला पड़ गया और वह बेहोश होकर गिर पड़ी। मन्त्री का ध्यान उसी तरफ लगा हुआ था। उसने दौड़ कर उसे पकड़ लिया और उसका मुँह पे फूँक दिए। तुरन्त उसे होश आ गया। लेकिन यह देख कर रूपधर क्रोध से जल उठा। उसने सोचे-विचारे बिना सिपाहियों को बुला कर हुक्म दिया कि मन्त्री को तुरन्त ले जाकर फाँसी पर चढ़ा दो।

जब मन्त्री ने देखा कि किसी-न-किसी तरह वह मारा ही जाएगा तो उसने पञ्छियों की बात-चीत का सारा हाल कह सुनाया। बस, वह तुरन्त सिर से पैर तक पत्थर हो गया।

यह देख कर रूपधर के पछतावे का ठिकाना न रहा। उसे यह सोच कर बड़ा दुख हुआ कि उसी के कारण मन्त्री की जान गई। उसने मन्त्री की वह मूर्ति अपने शयनागार में रखवा दी और दिन-रात खाना-पीना छोड़ कर रोने लगा कि क्या मेरा मन्त्री मुझे फिर नहीं मिलेगा ? कुछ दिन बाद एक दिन सबेरे तीन पञ्छी आकर उस पत्थर की मूरत पर बैठ गए और मनुष्य की भाषा में बोलने लगे। पहले पञ्छी ने कहा-"अगर यह राजा सचमुच अपने मन्त्री को इतना चाहता है तो वह अपनी सब से प्यारी चीज़ का बलिदान क्यों नहीं कर देता ? ऐसा करने से मन्त्री फिर जी उठेगा।"

"उसकी सबसे प्यारी चीज़ क्या है ?" दूसरे पञ्छी ने पूछा। "उसका बेटा ! अगर वह अपने बेटे को मार कर उसका खून इस मूर्ति पर छिड़क देगा तो इस मूर्ति में फिर से जान आ जाएगी।" पहले पञ्छी ने जवाब दिया। पञ्छियों की बात सुनते ही रूपधर अपने बेटे को उठा लाया और उसका बलिदान करने के लिए म्यान से तलवार निकाल ली। वार करने के लिए ज्यों-ही उसने हाथ उठाया त्यों-ही किसी ने पीछे से उसका हाथ पकड़ लिया। उसने सर उठा कर देखा तो तीनों पञ्छी ब्रह्मा-विष्णु-महेश के रूप धर कर खड़े थे। दूसरे ही क्षण वे तीनों अदृश्य हो गए और उसका हाथ पकड़े हाथ पकड़े हुए मन्त्री दूरदर्शी पूर्व-रूप में दिखाई दिया।





भद्राचल के पास विशाल घना जङ्गल है। उस जङ्गल में आसमान से बातें करने वाले लम्बे-लम्बे पेड़ और घनी झाड़ियाँ हैं। वहाँ दिन में भी घना अन्धेरा छाया रहता है और उन झाड़ियों में से होकर जाना किसी के बूते की बात नहीं। उन जङ्गलों में बाघ, चीते, भालू, तेन्दुए आदि जङ्गली जानवर स्वच्छन्द होकर घूमा करते हैं। ज़मीन पर तरह-तरह के विषैले साँप-बिच्छू सञ्चार करते हैं और लम्बे-लम्बे पेड़ों के ऊपर सब तरह के पञ्छी घोंसले बना कर रहा करते हैं।

उन जङ्गली जानवरों और पञ्छियों का शिकार करने में राजे-महाराजों, ज़मींदारों और गोरे साहबों को बड़ा मज़ा आता है। शिकार खेलने का शौक उन्हें बहुत होता है। ख़ास कर छुट्टियों में तो साहबों और अफसरों को शिकार खेले बिना कल नहीं पड़ती। अगर सुयोगवश साहबों ने कोई शिकार मार लिया तब तो उनकी खुशी का कहना ही क्या ?

"वाह ! कैसा अच्छा शिकार मारा साहब ने ?" लोग कहते हैं और उनकी बड़ी बड़ाई करते हैं। बस, साहब फूल जाते हैं। लेकिन ये साहब लोग जङ्गलों में जाकर अकेले शिकार नहीं खेल सकते। इसके लिए उन जङ्गलों के आस-पास रहने वालों की मदद लेनी पड़ती है। वे जानवरों के अड्डों का पता लगा कर इसकी सूचना शिकारियों को देते हैं। तब शिकारी ताक लगा कर बैठ जाते हैं और शिकार मारते

प्रकाश देव



हैं। एक बार दक्खिन से फोटू नामक एक आदमी आया और भद्राचल के नज़दीक एक जङ्गल में कुटीर बना कर रहने लगा। जङ्गली जानवरों की गति-विधि का पता लगाने में उसने बड़ा नाम कमाया। बहुत से साहब लोग आकर शिकार के बारे में उससे राय लेने लगे।

आस-पास के रहने वाले दूसरे लोग एक चवन्नी या अठन्नी पाते ही साहबों के पीछे दौड़ते-फिरते थे। लेकिन फोटू के लिए साहबों को खुद दौड़ लगानी पड़ती थी। फोटू अपनी कुटिया के बाहर न आता। लेकिन ज्योतिषी की तरह बैठे-बैठे बता देता कि कहाँ, कब, कैसे, किस तरह शिकार मिलेगा। यहाँ तक कि वह उस शिकार की लम्बाई-चौड़ाई, उसकी आदतें, उसके रहने की जगहें, सब बता देता। उसकी बताई जगह पर शिकारी लोग जाकर बैठ जाते। उसके बताए समय पर, उसका बताया शिकार वहाँ आ जाता। लेकिन आश्चर्य यह था कि कभी शिकारी उस शिकार को मार न सकते। वह किसी न किसी तरह उन्हें चकमा देकर निकल जाता। कोई कह न सकता कि यह शिकार की चतुराई का सबूत था या शिकारी की बेवकूफी का।

एक बार एक ज़मींदार ने शिकार खेलने आकर फोटू से मशवरा किया। फोटू की कुटिया जिस टीले पर थी उसके सामने ही जङ्गल के बीच एक जङ्गली नाला पड़ता था। फोटू ने कहा कि "एक बाघ उस नाले में पानी पीने आएगा। नाले के इस पार से ही आप उस पर निशाना लगा सकते हैं !" लेकिन उस ज़मींदार ने सोचा- "इस पार से निशाना लगाया और फासले की वजह

अगर कहीं निशाना चूक गया तब मैं नाले के इस पार होने के कारण शिकार का पीछा भी नहीं कर सकूँगा। नाले के उस पार चला जाऊँगा तो एक बार निशाना चूकने पर भी उसका पीछा करके दूसरी बार निशाना लगा सकूँगा।"

यह सोच कर ज़मींदार नाले के उस पार चला गया और घात लगा कर बैठ गया। बताए हुए समय पर एक बाघ उस जगह पर आया। बाघ को देखते ही ज़मींदार ने निशाना लगाया और गोली चला दी। "बाप रे ! बाप ! मुझे मारिए नहीं!" कह कर आदमी की तरह चिल्लाता हुआ वह बाघ नीचे गिर गया। यह अनहोनी बात देख कर ज़मींदार लपक कर उसके पास जा पहुँचा ।

बाघ के चोले से एक आदमी बाहर निकल आया। उसके पैर में गोली लग गई थी और खून बह रहा था।

ज़मींदार ने पट्टी बाँध कर पूछा कि इसका रहस्य क्या है ? तब उस



आदमी ने कहा-"हुजूर ! हम फोटू से रुपया लेते हैं और बदले में इस तरह जान पर खेल कर बाघों के रूप में जङ्गल में घूमते-फिरते हैं। वह हमें बता देता है कि किस रोज़ कितने बजे, किस जगह हमें जाना है। हम उक्त समय पर उक्त जगह पर पहुँच जाते हैं। लेकिन किसी न किसी तरह शिकारियों को चकमा देकर जान बचा लेते हैं।" उसने अपनी अजीब कहानी ख़तम की। ज़मींदार उलटे पाँव लौट कर फोटू की कुटी के पास गया। लेकिन तब तक कुटिया सूनी पड़ी थी।



पाँच

मिथिला नगर के राजा जनक बड़े भारी ज्ञानी थे। कहा जाता था कि उनके राज में औरतें और बच्चे भी ज्ञानी हैं। एक बार महामुनि नारद के मन में हुआ कि "चलो, देखें, यह बात कहाँ तक सच है ?" वे तुरन्त मिथिला गए। वहाँ जाकर नारद थके-माँदे होने के कारण बाँह के ऊपर सर टेक कर एक पेड़ के नीचे लेट गए।

निकट ही एक पनघट था। बहुत सी औरतें वहाँ पानी भरने को आ-जा रही थीं। इतने में पानी भरने जाती हुई एक औरत ने लेटे हुए नारद को देख कर अपनी साथिन से कहा- "बहन ! देखो तो यह तमाशा ! ये बड़े ऋषि-मुनि जान पड़ते हैं। लेकिन तकिए के बिना शायद इनको नींद नहीं आती। देखो न ! बाँह पर माथा टेक कर कितने आराम से लेट गए हैं बेचारे ! सब कुछ छोड़ने पर भी मालूम होता है, इन्हें अपने देह का अभिमान नहीं छूटा।" यह कहती हुई वह चली गई।

ये बातें सुन कर झट नारद ने अपनी बाँह सर के नीचे से हटा ली और चुपके से लेटे रहे। थोड़ी देर बाद दोनों औरतें पानी भर कर लौटने लगीं तो उन्होंने नारद की ओर फिर नज़र फेरी। पहली औरत ने फिर अपनी साथिन से कहा-"देखा बहन ! इस महामुनि को ! देह का अभिमान ही नहीं, इनका तो स्वामिमान भी नहीं छूटा अभी। हमारी बातें सुन कर इन्होंने रोष के मारे अपनी बाँह हटा ली। इतना अभिमान रखने वाले ये भी कोई मुनि हैं?" यह कहती हुई दोनों चली गई। नारद चुपचाप वहाँ से उठ चले। फिर पीछे मुड़ कर देखा तक नहीं।

विनय मोहन

छः

सुखवीर सिंह किसी समय बड़ा रईस था। उसके घर के सामने याचक लोग कतार बाँधे खड़े रहते थे। लेकिन दिन तो किसी के एक से नहीं जाते न ? भाग्य के फेर से सुखवीर सिंह अब दरिद्र बन गया। रोटी तक के लाले पड़ गए। फिर भी उसने स्वाभिमान न छोड़ा। भूखा पड़ा रहता था। लेकिन किसी के सामने हाथ न पसारता था।

एक दिन सुखवीर सिंह घर के सामने चबूतरे पर बैठा हुआ था कि उधर से एक कुञ्जड़िन तरकारियों की टोकरी सर पर रखे आ निकली। "बैंगन कैसे दोगी जी !" सुखवीर सिंह ने पूछा। "दो आने सेर दे रही हूँ।" तरकारी वाली ने जवाब दिया। एक आना सेर नहीं दोगी ?" सुखवीर सिंह ने फिर पूछा। उसके पास एक ही आना था।

"आए हैं बड़े सौदा करने वाले ! जाओ ! जाओ! मैं तीन पैसे सेर भी दूँगी तो भी तुम नहीं खरीद सकोगे !" यह कह कर कुञ्जड़िन ने टोकरी अपने सर पर उठा ली। उसके ये शब्द ठाकुर के हृदय में शूल की तरह चुभ गए। "इज्जत पर बट्टा लग गया। अब जीने से क्या फायदा है ?" उसने सोचा और अपनी लाठी उठा कर कुञ्जड़िन के सिर पर ऐसा वार किया कि वह तुरन्त ठण्डी हो गई। फिर उसने वहाँ से सीधे थाने में जाकर रपट लिखा दी।

थानेदार को उसका किस्सा सुन कर बहुत अचरज हुआ। "तो इतनी छोटी सी बात के लिए तुमने खून कर दिया ?" उसने पूछा। "मेरे मन में जो आग जल रही है आप उसे नहीं जान सकते !" ठाकुर ने जवाब दिया। कुछ दिन बाद उसको फाँसी हुई। सब लोग उसके लिए दुखी हुए।





राम और रावण का युद्ध कभी का समाप्त हो चुका था और भगवान कृष्ण के अवतार में थे। वह उत्तुङ्ग तरङ्गों से आन्दोलित सागर का तीर था। वीर अर्जुन खड़े सामने का सुहावना दृश्य देख रहे थे। वे मन में सोच रहे थे-"तो क्या इसी सागर पर राम की वानर सेना ने सेतु बाँधा था ? मालूम होता है, वानरों के बिना रामचन्द्र से कदम भी आगे न धरा जाता था। तो क्या वे इतने निकम्मे थे ? अगर मैं होता, तो अपने बाणों से पलक मारते पुल न बाँध लेता ? क्या इसके लिए वानर सेना के चट्टान उठा लाने और इतने कष्ट उठा कर पुल बाँधने की ज़रूरत पड़ती ?" यों अर्जुन अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बन रहे थे और भगवान रामचन्द्र का तिरस्कार कर रहे थे।

उसी समय हनुमान जी वहाँ आ पहुँचे। "कौन हो तुम ? क्या बक रहे हो ?" उन्होंने गरज कर पूछा और गदा हाथ में उठा ली।

"इस बन्दर की यह हिकमत ? यह उसी वानर सेना का एक भटका हुआ सिपाही तो नहीं है ?" अर्जुन ने मन में सोचा और उस बन्दर का मज़ाक उड़ाते हुए कहा-"कुछ नहीं, तुम्हारी सुन्दरता का गुणगान कर रहा हूँ।"

यह सुन कर हनुमान आग-बबूला हो गए। "क्या बकता है रे ! मेरा ही मज़ाक उड़ाता है ? देख, अपनी गदा से तेरा इस सिर अभी चकनाचूर कर देता हूँ।" उन्होंने गरज कर कहा।

"पहले जरा बता दो कि तुम कौन हो। तुमसे यह सवाल करने वाला अर्जुन है।" अर्जुन ने गाण्डीव सम्हाल कर कहा।



"तो तुम भीम के भाई हो ! जाओ, इस बार मैंने तुम्हें माफ कर दिया। लेकिन याद रखो, फिर कभी भगवान रामचन्द्र को तुमने कुछ कहा तो बस, मेरी पूँछ तुम्हारे गले में फाँसी की तरह कस जाएगी।" हनुमान ने कहा।

"अच्छा ! तो तुम राम के दाएँ हाथ हनुमान हो ! तुम्हें देख कर मुझे कुछ ऐसा ही भान हुआ। पुल बाँधने में तुम्हारा भी हाथ था न ? मेरी समझ में नहीं आता कि कैसे तुम लोगों ने उस असमर्थ स्वामी की सेवा की, जिसने धनुष-बाण हाथ में रहते हुए पत्थरों से पुल बाँधने के लिए अपने अनुचरों को दौड़ाया ?" अर्जुन ने कहा। "क्या कहा ? तो तुम मेरे स्वामी का मज़ाक उड़ाते हो ?" यह कह कर हनुमान ने गदा उठाई। "हो! हो ! हो ! हो ! वानर तो सर चढ़ गए हैं!" अर्जुन ने लापरवाही के साथ कहा।

तब हनुमान ने उसको चुनौती देते हुए कहा-"अच्छा ! आओ ! तुम अपने बाणों से इस सागर पर सेतु बनाओ। अगर मैं उसको पल भर में तोड़ कर पानी में न मिला सका तो जन्म भर तुम्हारी सेवा करूँगा ! यही मेरा प्रण है।"

तब सव्यसाची ने कहा-"तुम अपनी बात पर अटल रहोगे न ? सुनो ! अगर मैं अपने बाणों से इस सागर पर अभेद्य सेतु न बना सका तो तुरन्त अग्नि में कूद कर प्राण दे दूँगा। यह मेरा प्रण है।" यह कह कर अर्जुन ने गाण्डीव उठाया और देखते-देखते बाणों की वर्षा करके सागर के उत्तुङ्ग तरङ्गों के ऊपर एक अद्‌भुत पुल बनाया। तब हनुमान ने उस पुल के पास जाकर अपने पैर के अँगूठे से उसे दबाया। तुरन्त वह पुल, जिसे अर्जुन ने अभेद्य समझा था चकनाचूर होकर



पानी में मिल गया। कहीं निशानी भी बाकी न रही।

अर्जुन के मुँह पर काटो तो खून नहीं। "तो क्या यही था मेरा अस्त्र-कौशल ? और मैं अर्जुन ! संसार का सबसे बड़ा धनुर्धर !" यह कह कर वे आग में जल मरने की तैयारी करने लगे। तब हनुमान ने चुटकी लेते हुए कहा-"अर्जुन ! फिर कभी ऐसी बाजियाँ न लगाना । जाओ, यहाँ तुम्हारे जल मरने के लिए आग भी नहीं मिल सकती।"

लेकिन अर्जुन को क्रोध आ गया। पाण्डव कभी अपने प्रण से नहीं टल सकते हनुमान !" यह कह कर उन्होंने गाण्डीव पर एक तीर चढ़ा कर धरती पर ऐसा मारा कि तुरन्त वहाँ भयङ्कर अग्नि धधकने लगी। अर्जुन भगवान कृष्ण का नाम लेकर उन लपटों में कूदने चले। हनुमान ने उन्हें रोकने की बहुत कोशिश की। लेकिन वे रुके नहीं।

इसी समय न जाने, कहाँ से एक बूढ़े ब्राह्मण ने आकर अर्जुन का हाथ पकड़ लिया और कहा - "ठहरो! ठहरो! यह कैसा दुष्कर्म है ? क्या आत्मघात करना महा पाप नहीं ?" तब हनुमान ने उस ब्राह्मण को सारा किस्सा सुना दिया और दोनों के प्रणों का पूरा हाल बता दिया।

ब्राह्मण ने सारा हाल सुन कर कहा-"ठीक है। लेकिन ऐसे मामलों में एक पञ्च का होना जरूरी है। उसके बिना कुछ तय नहीं हो सकता। अब मैं यहाँ आ ही गया हूँ। इसलिए तुम लोगों के झगड़े का फैसला करूँगा। अर्जुन ! आओ ! फिर एक बार अपनी कुशलता से तुम तीरों का पुल तैयार करो ! हनुमान ! जो हो गया सो

जाने दो ! इस बार अर्जुन जो पुल बनाए उसे तुम तोड़ने की कोशिश करना !" यह कह कर उसने दोनों को फिर से बाजी लगाने को राजी किया।



दुगने उत्साह से पार्थ ने फिर एक बाणों का सेतु बनाया। हनुमान ने उछलते हुए जाकर उसे अँगूठे से दबाया। लेकिन इस बार सेतु का बाल भी बाँका न हुआ। तब उन्होंने उस पर अपना पैर रख दिया। लेकिन कुछ न हुआ। आखिर उन्होंने उस पर चढ़ कर उछल-कूद मचाई और अपनी सारी ताकत लगाई। लेकिन इससे भी कोई फायदा न हुआ।

तब हनुमान की समझ में आ गया कि वह कोई मामूली पुल नहीं है और वह बूढ़ा ब्राह्मण कोई मामूली आदमी नहीं है। तुरन्त भक्ति-परवश होकर वे उस ब्राह्मण के पैरों पड़ गए और गुण-गान करने लगे-"हे राम ! क्या तुम्हीं इस रूप में मुझे पाठ पढ़ाने आए हो ? क्या मैं इतना बेवकूफ हूँ, जो समझ न पाऊँ कि तुम्हारी अद्भुत महिमा से यह पुल अभेद्य बन गया है? कितने दिन बाद तुम्हारे दर्शन हुए? आओ, मुझे एक बार अपना मङ्गल-रूप दिखाओ !" यह कहते हुए वे उनके पैरों पर गिर गए।

उस ब्राह्मण ने हनुमान को बड़े प्रेम से उठा कर गले से लगाया। जब हनुमान की आँखें खुलीं तो देखा कि उनके सामने ब्राह्मण के बदले भगवान रामचन्द्र खड़े हैं। "हनुमान ! क्या तुमने अर्जुन को पराया समझ लिया है ? तुम दोनों समान प्रताप वाले हो। कोई कम नहीं। अगर तुम दोनों में सङ्घर्ष होगा तो संसार में अनर्थ हो जाएगा। इसलिए तुम दोनों अपनी-अपनी

शक्ति का संसार के कल्याण के लिए उपयोग करो। शीघ्र ही महाभारत का युद्ध प्रारम्भ होने वाला है। उसमें हम सबको मिल कर काम करना है। नहीं तो कर्तव्य कैसे पूरा होगा ? तब मैं कृष्ण-रूप में अर्जुन का सारथी बनूँगा। तुम्हें अर्जुन के रथ के झण्डे पर बैठ कर उसकी विजय में सहायता करनी होगी। तुम्हारे रूप से अङ्कित होकर उसके रथ का झण्डा संसार में 'कपिध्वजा' के नाम से विख्यात होगा।" भगवान ने कहा। "आपकी आज्ञा सिर आँखों पर !" यह कह कर हनुमान ने भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया। तुरन्त वह ब्राह्मण आँखों से ओझल हो गया।

हनुमान राम का स्मरण करते हुए उदयाचल चले गए। अर्जुन को हनुमान की चेष्टा कुछ समझ में न आ रही थी। ब्राह्मण की दिशा में देखने पर उन्हें उसके बदले भगवान कृष्ण दिखाई देने लगे थे।

उन्होंने उसके पास आकर कहा- "सखे !जल्दबाज़ी कभी नहीं करनी चाहिए। विपक्ष का बल जाने बिना कभी बाज़ी नहीं लगानी चाहिए। हनुमान को तुमने क्या समझ लिया है ? वह महा-भक्त है। तुम्हारी ही तरह वह अजेय है। तुम आग में कूद कर जान देना चाहते थे न ? यह कैसी कायरता ? महाभारत के युद्ध में पाण्डवों का सहारा कौन बनेगा फिर ? क्या उस युद्ध में अधर्म का नाश करने के लिए ही मैंने अवतार नहीं लिया है ? क्या तुम सब कुछ भूल गए ?" यों फटकार कर भगवान ने उसे कपिध्वजा का सारा हाल सुना दिया !



CHANDAMAMA (HINDI) JANUARY 1952 REGD. No. M. 5452



रङ्ग भरो (कहानी) चित्र ६